

शासनतंत्रा, मंत्रिपरिषद् एवं संस्थाएँ

Dr. Renu Singh*

Teacher, Politic Science, Shri Ram Lakhan Singh Yadav Sarvoday Senior Secondary School, Punaichak, Patna

सार – कौटिल्य के अर्थशास्त्रा के विभिन्न प्रकरणों में शासन तंत्रा, मंत्रिपरिषद् एवं संस्थाओं का विशद् विश्लेषण है, साथ ही शासनतंत्रा में संस्थाओं की परंपरागत एवं नवीन विधियों के मध्य समन्वय के द्वारा राज-व्यवस्था को चित्रित करने का एक प्रयास है। विभिन्न स्रोतों एवं अर्थशास्त्रा से प्राप्त तथ्यों के आधार पर बृहत् मौर्यसाम्राज्य की शासन संस्थाओं के विकास और उसमें राजा के बाद महत्वपूर्ण मंत्रिपरिषद् का उल्लेख है, जिसके द्वारा संपूर्ण शासनतंत्रा को राजा के सर्वोच्च निर्णय के निकट लाना, शासन-व्यवस्था की सफलता को संपूर्ण तंत्रा मानता है।

शब्द कुंजी - साम्राज्य, मंत्रिपरिषद्, राजशासन, मगध जनपद, दिव्यावदान।

-----X-----

भूमिका:

“कौटिल्य कालीन शासनतंत्रा, मंत्रिपरिषद् एवं संस्थाओं के अध्ययन का आधार-अर्थशास्त्रा है। यद्यपि अन्य स्रोत एवं पुरातात्विक लेख, शिलालेख से भी जानकारी मिलती है। अर्थशास्त्रा के आधार पर मौर्य-युग की शासन संस्थाओं का अनुशीलन करते हुए हमें निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए –

- (1) कौटिल्य अर्थशास्त्रा में प्रतिपादित शासन संस्थाओं का संबंध मुख्यतया जनपदों के शासन से है। मगध - साम्राज्य के विकास से पूर्व भारत में बहुत-से स्वतंत्रा जनपदों की सत्ता थी, जो कि अधीनस्थ रूप में मौर्य-साम्राज्य में भी कायम रहे। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्रा का निर्माण पुराने आचार्यों के शास्त्रों का संग्रह व समन्वय करके किया था। अतः स्वाभाविक रूप से उसमें बहुत-से ऐसे मन्तव्यों का समावेश है जिनका संबंध जनपदों के शासन से है। अर्थशास्त्रा में जिन बहुत से अध्यक्षों व अमात्यों का विवरण दिया गया है, वे सम्भवतः जनपदों के शासन से ही संबंध रखते हैं।
- (2) एक विशाल साम्राज्य का निर्माण हो जाने पर इस साम्राज्य का शासन मुख्यतया सम्राट् व उसकी मंत्रिपरिषद् द्वारा ही संचालित होता था। साम्राज्य का निर्माण क्योंकि ‘बिजिगीशु’ राजा द्वारा हुआ था, अतः उसका शासन भी उसी के अधीन था। वही ऐसे राज्य में

‘कूटस्थानीय’ होता था”[1] राजा यद उत्थानशील हो, तो राज्य उन्नति करता है। यदि वह प्रमादी हो तो राज्य अवनति के मार्ग पर अग्रसर होता है। मंत्रि-पुरोहित आदि मंत्री, अध्यक्ष आदि कर्मचारी-वर्ग राजा के सक्रिय होने पर ही राज्य की उन्नति के लिए तत्पर होते हैं। सब पराधिकारी राजा द्वारा ही नियुक्त किये जाते हैं। यदि राजा अपने विवेक से सुयोग्य मंत्रियों व पदाधिकारियों को नियुक्त करेगा तभी उनके यत्न से राज्य का उत्कर्ष संभव होगा।[2] इस दशा में यह संभव नहीं था, कि साम्राज्य के केन्द्रीय शासन में किन्हीं ऐसी शासन-संस्थाओं का विकास हो, जिनमें जनता को भी प्रतिनिधित्व प्राप्त हो। यही कारण है कि कौटिल्य अर्थशास्त्रा द्वारा साम्राज्य के केन्द्रीय शासन में कहीं सभा-समिति जैसी संस्थाओं के केन्द्रीय शासन में की सभा-समिति जैसे संस्थाओं की सत्ता सूचित नहीं होती, यद्यपि परंपरागत ग्रामसंघ और जनपद संघ (या पौर जनपद सभाएँ) इस काल में भी विद्यमान रहे। मंत्रि-परिषद् की सत्ता इस काल में अवश्य थी, पर उसमें कितनी मंत्री हों, उन्हें कैसे नियुक्त किया जाए और उनसे किस ढंग से परामर्श लिया जाए, यह सब राजा की अपनी इच्छा पर निर्भर था।

यद्यपि संपूर्ण मौर्य साम्राज्य की राजधानी पाटलीपुत्रा थी, पर वहाँ से कम्बोज, वंग और आंध्र तक विस्तृत साम्राज्य का शासन सुचारु रूप से नहीं किया जा सकता था। अतः शासन की

दृष्टि से मौर्यों के अधीन संपूर्ण 'विजित' को पाँच भागों में बाँटा गया था, जिनकी राजधानिया क्रमशः पाटलिपुत्रा, तोसाली, उज्जैनी, तक्षशिला और सुवर्णगिरि थी। इन राजधानियों को दृष्टि में रखकर हम यह सहज में अनुमान कर सकते हैं, कि विशाल मौर्य साम्राज्य पाँच चक्रों में विभक्त था। ये चक्र (प्रोत या सूवे) निम्नलिखित थे

- (1) उत्तरापथ-जिसमें कम्बोज, गांधार, काश्मीर, अपफगानिस्तान, पंजाब आदि के प्रदेश अंतर्गत थे। इसकी राजधानी तक्षशिला थी।
- (2) पश्चिम चक्र इसमें काठियावाड़ गुजराज से लेकर राजपूताना, मालवा आदि के सब प्रदेश शामिल थे। इसकी राजधानी उज्जैनी थी।
- (3) दक्षिण-पथ-विंध्याचल के दक्षिण का सारा प्रदेश इस स्रक में था और इसकी राजधानी सुवर्णगिरि थी।
- (4) कलिंग-अशोक ने अपने नये जीते हुए प्रदेश का एक पृथक् चक्र बनाया था, जिसकी राजधानी तोसाली थी।
- (5) मध्यदेश-इसमें वर्तमान बिहार, उत्तरप्रदेश और बंगाल सम्मिलित थे। इसकी राजधानी पाटलिपुत्रा थी। इन पाँचों चक्रों का शासन करने के लिए प्रायः राजकुल के व्यक्तियों को नियत किया जाता था, जिन्हें कुमार कहते थे। कुमार अनेक महामात्यों की सहायता से अपने-अपने चक्र का शासन करते थे। अशोक और कुनाल, राजा बनने से पूर्व उज्जैनी, तक्षशिला आदि के 'कुमार' रह चुके थे।

चक्रों के उपविभाग-इन पाँच चक्रों के अंतर्गत पिफर अनेक छोटे शासन-केन्द्र या मण्डल भी थे जिनमें कुमार के अधीन महामात्य शासन करते थे। चक्रों के शासन के लिए कुमार की सहायतार्थ जो महामात्य नियुक्त होते थे, उन्हें शासन संबंधी बहुत अधिकार प्राप्त थे।

जनपद और ग्राम - मौर्य साम्राज्य के मुख्य पाँच चक्र या विभाग थे, और पिफर ये चक्र अनेक मण्डलों में विभक्त थे। प्रत्येक मण्डल में बहुत से जनपद होते थे। शासन की दृष्टि से जनपदों के भी विविध विभाग होते थे, जिन्हें कौटलीय अर्थशास्त्र में स्थानीय, द्रोणमुख, खार्वटिक, संग्रहण और ग्राम कहा गया है।

शासक-वर्ग- शासनकार्य में सम्राट की सहायता करने के लिए एक मंत्रि-परिषद् होती थी। अशोक के शिलालेखों में भी उसकी परिषद् होती थी। अशोक के शिलालेखों में भी उसकी परिषद् का बार-बार

उल्लेख है। केन्द्रीय सरकार की ओर से जो राज-कर्मचारी साम्राज्य में शासन के विविध पदों पर नियुक्त थे, उन्हें पुरुष कहते थे। ये पुरुष उत्तम, मध्यम और हीन-तीनों दर्जों के होते थे।

स्थानीय स्वाशासन- जनपदों के शासन का संचालन करने के लिए जहाँ केन्द्रीय सरकार की तरफ से समाहर्ता नियत थे, वहाँ जनपदों की अपनी आंतरिक स्वतंत्रता भी अक्षुण्ण रूप से कायम थी। कौटलीय अर्थशास्त्र में बार-बार इस बात पर जोर दिया गया है कि जनपदों, नगरों व ग्रामों के धर्म, चरित्र और व्यवहार को अक्षुण्ण रखा जाय। इसका अभिप्राय यह हुआ, कि इनमें अपना स्थानीय स्वशासन पुरानी परंपरा के अनुसार जारी था।

मौर्य-साम्राज्य के शासन का यही स्थूल ढाँचा है। अब हम इसका अधिक विस्तार से वर्णन करेंगे।

विजिगीशु राजशि सम्राट:- विविध जनपदों और गणराज्यों को जीतर जिस विशाल मगध -साम्राज्य का निर्माण हुआ था, उसका केन्द्र राजा या सम्राट था। चाणक्य के अनुसार राज्य के सात अंगों में केवल दो की मुख्यता है राजा और देश।[3]

“प्राचीन परंपरा के अनुसार राज्य के सात अंग माने जाते थे- राजा, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, सेना और मित्र। पुराने युग में जब छोटे-छोटे जनपद होते थे और उनमें एक ही 'जन' का निवास होता था, तो राजा की उनमें विशेष महता नहीं होती थी। इसीलिए आचार्य भारद्वाज की दृष्टि में राजा की अपेक्षा अमात्य की

अधिक महता थी। अन्य आचार्यों की दृष्टि में अमात्य की अपेक्षा भी जनपद, दुर्ग, कोश आदि का महत्व अधिक था।[4] कौटिल्य के शब्दों में “मंत्री, पुरोहित आदि भृत्य वर्ग की और राज्य के विविध अध्यक्षों व अमात्यों की नियुक्ति राजा ही करता है। राजपुरुषों पर, कोष व जनता पर यदि कोई विपत्ति आ जाय, तो उसका प्रतीकार राजा द्वारा ही होता है। इनकी उन्नति भी राजा के ही हाथ में है। यदि अमात्य ठीक न हों, तो राजा उन्हें हटाकर नये अमात्यों की नियुक्ति करता है। पूज्य लोगों की पूजा कर और दुष्ट लोगों का दमन कर राजा ही सबका कल्याण करता है, यदि राजा सम्पन्न हो, तो उसकी समृद्धि से प्रजा भी सम्पन्न होती है, राजा का जो शील हो, वही शील प्रजा का भी होता है। यदि राजा उद्यमी व उत्थानशील हो, तो प्रजा भी उत्थानशील होती है। यदि राजा प्रमादी हो, तो प्रजा भी वैसी ही हो जाती है। अतः राज्य में कूटस्थानीय (केन्द्रीभूत) राजा ही है,”[5]

जब साम्राज्यों में राजा का इतना अधिक महत्व हो, तो राजा को भी एक आदर्श व्यक्ति होना चाहिए। राजा की बुद्धि बहुत तीक्ष्ण

होनी चाहिए। स्मरण शक्ति, बुद्धि और बल की उसमें अतिशयता होनी चाहिए। उसे अत्यंत उग्र, अपने ऊपर काबू रखने वाला, सब शिल्पों में निपुण, सब दोषों से रहित और दूरदर्शी होना चाहिए। काम, क्राध, लोभ, मोह, चपलता आदि पर उसका पूरा काबू होना चाहिए।

चाणक्य इस बात को भली-भाँति समझता था, कि इस प्रकार का आदर्श पुरुष सुगमता से नहीं मिल सकता। पर शिक्षा और विनय से ये गुण उत्पन्न किये जा सकते हैं। यदि एक कुलीन और होनहार व्यक्ति को बचपन से ही उचित शिक्षा दी जाय, तो उसे एक आदर्श राजा बनने के लिए तैयार किया जा सकता है। अतः कौटिलीय अर्थशास्त्रा के बिजिगीशु राजा का पूर्ण पुरुष होकर राजशि का जीवन व्यतीत करते हुए अपना कार्य करना चाहिए।

मगध ने जिस प्रकार के साम्राज्य का विकास किया था, उसकी सफलता के लिए अवश्य ही राजा को अनुपम शक्तिशाली और गुण सम्पन्न होना चाहिए था। निः सन्देह, मगध -साम्राज्य के शासन में राजा ही 'कूटस्थानीय' होता था। यही कारण है, कि यदि कोई राजा निर्बल या अयोग्य हुआ, तो उसके विरुद्ध विद्रोह उठ खड़े होते थे, और साम्राज्य की शक्ति क्षीण होने लगती थी। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर आचार्य चाणक्य ने राजा के वैयक्तिक गुणों पर अत्यधिक बल दिया है।

मंत्रिपरिषद्:- "आचार्य चाणक्य के अनुसार राजकृति तीन प्रकार की होती है- प्रत्यक्ष, परोक्ष और अनुमेय, जो अपने सामने हो, वह प्रत्यक्ष है। जो दूसरे बताएँ, वह परोक्ष है। किये हुए कर्म से बिना किये हुए कर्म से बिना किये का अंदाजा करना अनुमेय कहलाता है, सब काम एक साथ नहीं होते। राजकर्म बहुत से होते हैं, और बहुत-से स्थानों पर होते हैं। अतः एक राजा सारे राजकर्म अपने आप नहीं कर सकता। इसलिए उसे अमात्यों की नियुक्ति करने की आवश्यकता होती है। इसीलिए यह भी आवश्यक है कि मंत्री नियत किये जाएँ, जो परोक्ष और अनुमेय राजकर्मों के संबंध में राजा को परामर्श देते रहे।[6] राज्यकार्य सहायता के बिना सिद्ध नहीं हो सकता। एक पहिये से राज्य की गाड़ी नहीं चल सकती, इसलिए राजा सचिवों की नियुक्ति करे, और उनकी सम्मति को सुने।[7]

मंत्रिपरिषद् का कार्य सर्वथा गुप्त हो, इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता था। चाणक्य के अनुसार इसके लिए ऐसा स्थान चुनना चाहिए, जहाँ पक्षियों तक की भी दृष्टि न पड़े जहाँ से कोई भी बात बाहर का आदमी न सुन सके। सुनते हैं, कि शुक, सारिका, कुते आदि जीव-जन्तुओं तक से मंत्रा का भेद खुल गया। इसलिए मंत्रारक्षा का पूरा प्रबंध किये बिना इस कार्य में कभी प्रवृत्त न हो। यदि कोई मंत्रा का भेद खोले तो उसे जान से मार दिया जाय।[8]

"बड़ी मंत्रिपरिषद् के अतिरिक्त एक छोटी उपसमिति भी होती थी, जिसमें तीन या चार खास मंत्री रहते थे। इसे 'मंत्रिणः' कहा जाता था। जरूरी मामलों पर इसकी सलाह ली जाती थी। राजा प्रायः अपने 'मंत्रिणः' और 'मंत्रिपरिषद् के परामर्श से ही राजकार्य का संचालन करता था। वह भली-भाँति समझता था, कि मंत्रासिद्धि अकेले कभी नहीं हो सकती। जो बात मालूम नहीं है उसे मालूम करना, जो मालूम है उसका निश्चय करना। जिस बात में दुविधा है, उसके संशय को नष्ट करना और जो बात केवल आंशिक रूप से मालूम है, उसे पूर्णतः जानना, यह सब कुछ मंत्रिपरिषद् के मंत्रा द्वारा ही हो सकता है। अतः जो लोग बुद्धि वृद्ध हो, उन्हें सचिव या मंत्री बनाकर उनसे सलाह लेनी चाहिए। मंत्रिपरिषद् में जो बात भूयिष्ठ (अधिक संख्या के) कहे, उसी के अनुसार कार्य करना उचित है, पर यदि राजा को भूयिष्ठ की बात 'कार्यसिद्धिक' प्रतीत न हो, तो उसे उचित है कि वह उसी सलाह को माने, जो उसकी दृष्टि में कार्यसिद्धिकर हो।[9]

इसप्रकार यह स्पष्ट है, कि मौर्यकाल में राज्यकार्य में परामर्श देने के लिए मंत्रिपरिषद् की सत्ता थी। अशोक के शिलालेखों में जिसे 'परिषा' कहा गया है, वही कौटिलीय अर्थशास्त्रा की मंत्रिपरिषद् है। पर इस परिषद् की मंत्रियों की नियुक्ति न तो निर्वाचन से होती थी और न इसके कोई कुलक्रमानुगत सदस्य ही होते थे। परिषद् के मंत्रियों की नियुक्ति राजा अपनी स्वेच्छा से करता था। जिन अमात्यों एवं अन्य व्यक्तियों को वह 'सर्वोपधाशुद्व' पाता था उनमें से कुछ को आवश्यकतानुसार मंत्रिपरिषद् में नियुक्त कर लेता था। मगध साम्राज्य की मंत्रिपरिषद् यद्यपि राजा की अपनी कृति थी, तथापि वह प्राचीन परिपाटी के अनुसार राजा को सुपथ पर लाने के कर्तव्य की उपेक्षा नहीं करती थी। राज्य के शासन में मंत्री व अमात्य राजा की स्वेच्छाचारिता को किस प्रकार नियंत्रित कर सकते थे, इस संबंध में दित्यावदान को एक कथा उल्लेखनीय है।

"पहले राजा अशोक सुवर्ण पात्रों में रखकर भिक्षुओं को भोजन भेजा करता था। पर ऐसा करने से उसे मना कर दिया गया। फिर उसने चाँदी के पात्रों में भोजन भेजना चाहा पर इसे भी रोक दिया गया। फिर उसने लोहे के पात्रों में भोजन भेजना चाहा पर इसकी अनुमति भी उसे नहीं दी गई। अंत में मिट्टी के पात्रों में उसने भोजन भेजना चाहा, पर ऐसा करने से भी उसे रोक दिया गया। अंत में उसके पास केवल आधा आँवला बच गया जो कि उस समय उसके हाथ में था। संविग्न होकर अशोक ने अमात्यों और पौरों को बुलाकर पूछा- 'इस समय पृथ्वी (देश या राज्य) का स्वामी कौन है? अमात्य ने उठकर और यथोचित रीति से राजा का अभिवादन करके कहा - 'देव ही राज्य के स्वामी हैं।' इस पर आँसुओं से अपने मुख को गीला करते हुए अशोक ने कहा 'तुम केवल दक्षिण से भूत क्यों बोलते हो? मैं

तो राज्य से भ्रष्ट हो गया हूँ। मेरे पास तो केवल यह आधा आँवला ही बचा है, जिसपर मेरा स्वामित्व है। ऐसे को धिक्कार।' इसके बाद अशोक ने उस आधे आँवले को कुर्कुटाराम भेजते हुए कहलवाया - 'त्यागशूर मार्यक' जर जो राजा अशोक था, वह सारे जम्बूद्वीप का स्वामी होकर भी अब केवल इस आधे आँवले का ही स्वामी रह गया है। भृत्यों ने उसके अधिकार को छीन लिया है। अब वह केवल इस आधे आँवले को ही दान में दे सकता है।[10]

मंत्रिपरिषद् के अमात्य राजा की स्वेच्छाचारिता पर पर्याप्त नियंत्रण रख सकते थे, यह बात दित्यावदान की इस कथा से भलीभाँति सूचित होती है। राजा लोग देश के प्राचीन परंपरागत राजधर्म का पालन करते थे और अपने 'व्यवहार' का निर्धारण उसी के अनुसार करते थे। यह धर्म और व्यवहार सनातन थे राजा की स्वेच्छा पर निर्भर नहीं थे। इन्हीं सबका परिणाम था, कि पाटलिपुत्र में विजिगीशु राजर्षि राजाओं के रहते हुए भी जनता अपना शासन अपने आप किया करती थी। इन सब बातों पर कुछ अधिक विस्तार से प्रकाश डालना उपयोगी होगा।

जनपदों का शासन- मगध के साम्राज्यवाद ने धीरे-धीरे भारत के सभी पुराने जनपदों को अपने अधीन कर लिया था। पर इन जनपदों की अपनी सभाएँ होती थीं, जिन्हें पौर जनपद कहते थे। जनपद की राजधनी या पुर की सभा को 'पौर' और शेष प्रदेश की सीमा को 'जनपद' कहा जाता था। प्रत्येक जनपद के अपने धर्म, व्यवहार और चरित्र भी होते थे। मगध के सम्राटों ने इन विविध जनपदों को जीतकर इनकी आंतरिक स्वतंत्रता को कायम रखा।

जनपदों का शासन करने के लिए सम्राट की ओर से समाहर्ता नामक राज-पुरुष की नियुक्ति की जाती थी। पर वह जनपद के आंतरिक शासन में हस्तक्षेप नहीं करता था। स्वशासन की दृष्टि से सब जनपदों की स्थिति एक समान नहीं थी। शैशुनाग, नन्द आदि मगध राजा भी अपने साम्राज्य का बहुत कुछ विस्तार करने में सफल हुए थे।

नगरों का शासन- मौर्यकाल में नगरों के स्थानीय स्वशासन की क्या दशा थी, इसका सबसे अच्छा परिचय मेगास्थनीज की यात्रा विवरण से मिलता है। मेगास्थनीज ने पाटलिपुत्र के नगर-शासन का विस्तार से वर्णन किया है। उसके अनुसार पाटलिपुत्र की नगर सभा छः उपसमितियों में विभक्त थी और प्रत्येक उपसमिति के पाँच-पाँच सदस्य होते थे। इन उपसमितियों के कार्य निम्नलिखित थे-

पहली उपसमिति का कार्य औद्योगिक तथा शिल्प-संबंधी कार्यों का निरीक्षण करना था। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में शिल्पी लोगों का समाज में बड़ा आदर था। प्रत्येक शिल्पी शब्द की सेवा में

नियुक्त माना जाता था। दूसरी उपसमिति का कार्य विदेशियों का सत्कार करना था आजकल जो काम विदेशों के इतमण्डल करते हैं, उनमें से उनके कार्य यह समिति किया करती थी। जो विदेशी पाटलिपुत्र में आये, उन पर यह उपसमिति भी निगाह रखती थी। तीसरी उपसमिति का कार्य मर्दुमशुमारी करना था। मृत्यु और जन्म की सूची रखना इसी उपसमिति का कार्य था। कर लगाने के लिए यह सूची बड़ी उपयोगी होती थी।

चौथी उपसमिति क्रय-विक्रय के नियमों का निर्धारण करती थी। भार और माप के परिमाणों को निश्चित करना, व्यापारी लोग उनका शुद्धता के साथ और सही सही उपयोग करते हैं, इसका निरीक्षण करना इस उपसमिति का कार्य था। पाँचवी उपसमिति व्यापारियों पर इस बात के लिए कड़ा निरीक्षण रखती थी, कि वे लोग नई और पुरानी वस्तुओं को मिलाकर तो नहीं बेचते। नई और पुरानी चीजों को मिलाकर बेचना कानून के विरुद्ध था। छठी उपसमिति का कार्य क्रय-विक्रय पर टैक्स वसूल करना होता था।

इस प्रकार छः उपसमितियों के पृथक्-पृथक् कार्यों का उल्लेख कर मेगास्थनीज ने लिखा है कि "ये कार्य हैं, जो उपसमितियाँ पृथक् रूप से करती हैं। पर पृथक् रूप में जहाँ उपसमितियों को अपने-अपने विशेष कार्यों का ख्याल करना होता है, वहाँ वे सामूहिक रूप से सर्वसामान्य या सर्वसाधारण हित के कार्यों पर भी ध्यान देती हैं, यथा सार्वजनिक इमारतों को सुरक्षित रखना, उनकी मरम्मत का प्रबंध करना, कीमतों को नियंत्रित करना और, बाजार, बन्दरगाह और मंदिरों पर ध्यान देना।"[11] संभवतः मेगास्थनीज द्वारा वर्णित नगर-सभा नागरिक के कर्मचारियों से स्वतंत्र होकर ही अपने कार्यों को संपादित किया करती थी।

ग्रामों का शासन- जनपदों में बहुत-से ग्राम सम्मिलित होते थे और प्रत्येक ग्राम शासन की दृष्टि से अपनी पृथक् व स्वतंत्रता सत्ता रखता था। कौटलीय अर्थशास्त्र के अध्ययन में हमें इन ग्राम-संस्थाओं के संबंध में बहुत-सी बातें ज्ञात होती हैं। प्रत्येक ग्राम का शासक पृथक्-पृथक् होता था, जिसे ग्रामिक कहते थे।

व्यवसायियों की श्रेणियाँ- मौर्यकाल के व्यवसायी और शिल्पी श्रेणियों में संगठित थे।

कौटलीय अर्थशास्त्र के अध्ययन से मौर्य-साम्राज्य के केन्द्रीय संगठन के संबंध में भलीभाँति परिचय मिलता है। इस काल में शासन के विविध विभाग 'तीर्थ' कहलाते थे। इनकी संख्या अठारह होती थी। इनकी संक्षेप से उल्लेख करना उपयोगी है।

1. मंत्री और पुरोहित- कौटलीय अर्थशास्त्र में इन दोनों पदों का उल्लेख प्रायः साथ-साथ आया है। प्रजा की सम्मति जानने के लिए गुप्तचरों को नियत करता था। विदेशों में राजदूतों की नियुक्ति और परराष्ट्र नीति का संचालन करता था।[12]
2. समाहर्ता- विविध जनपदों के शासन के लिए नियुक्त राजपुरुषों को जहाँ समाहर्ता कहते थे, वहाँ सब जनपदों के शासन का संचालन करनेवाला विभाग (तीर्थ) भी 'समाहर्ता' नामक अमात्य के अधीन था।[13] समाहर्ता के अधीन अनेक अध्यक्ष होते थे, जो निम्नलिखित थे- (क) कुल्काध्यक्ष (ख) पौतवाच्यक्ष (ग) मानाध्यक्ष (घ) सूत्राध्यक्ष (ङ) सीताध्यक्ष[14] कृषि विभाग के अध्यक्ष को सीताच्यक्ष कहते थे। वह न केवल देश में कृषि की उन्नति पर ही ध्यान देता था, अपितु राजकीय भूमि पर दास, मनजूर आदि से खेती भी करवाता था। (च) सुराध्यक्ष (छ) सूनाध्यक्ष (ज) गणिकाध्यक्ष (झ) मुद्राध्यक्ष (स) विविताध्याक्ष (ट) नावध्यक्ष (ठ) गोडध्यक्ष (ड) अथ्वाध्यक्ष (ढ) हस्तध्यक्ष (ण) कुप्याध्यक्ष (त) पण्याध्यक्ष (थ) लक्षणाध्यक्ष (द) आकराध्यक्ष (ध) देवताध्यक्ष[15] विविध देवताओं एवं मंदिरों का प्रबंध इसके अधीन रहता था। (न) सौवर्णिक[16] टकसाल के अध्यक्ष को सौवर्णिक कहते थे।
3. सन्निधता-राजकीय कोष का विभाग सन्निधता के हाथ में होता था। राजकीय आय एवं व्यय का हिसाब रखना और उसके संबंध में नीति का निर्धारण करना सन्निधता का ही कार्य था।
4. सेनापति- यह युद्धविभाग का महामात्य होता था।
5. युवराज - राजा की मृत्यु के बाद जहाँ युवराज राजगद्दी का उत्तराधिकारी होता था, वहाँ राजा के जीवनकाल में भी वह शासन में हाथ बँटाता था।
6. प्रदेष्टा - मौर्यकाल में न्यायालय दो प्रकार के होते थे, धर्मस्थायी और कंटकशोधन, करकशोधन न्यायालयों के न्यायाधीश को प्रदेष्टा कहते थे।
7. नायक- सेना के मुठय संचालक को नायक कहते थे।
8. व्यावहारिक - धर्मस्थायी न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश को व्यवहारिक कहते थे। इसी को 'धर्मस्थ' भी कहते थे।[17]
9. कर्मान्तिक - मौर्यकाल में अनेक कारखानों का संचालन होता था।
10. मंत्रि-परिषद् अध्यक्ष - राजा को सलाह देने के लिए मंत्रिपरिषद् होती थी।
11. दण्डपाल - दण्डपाल भी सेना के साथ ही संबंध रखता था।
12. अन्तपाल - सीमा की रक्षा के लिए बहुत से दुर्ग बनाये जाते थे। जो अन्तपाल के ही हाथ में थी।
13. दुर्गपाल- साम्राज्य के अन्तर्वर्गों चुर्ग दुर्गपाल के अधिकार में रहते थे।
14. नागरक- जैसे जनपदों का शासन समाहर्ता के अधीन था। वैसे ही पुरों या नगरों के शासन का सर्वोत्तम अधिकारि नागरिक होता था।
15. प्रशास्ता - आज्ञाओं को लिपिबद्ध करने के लिए जो विभाग था, उसके प्रधान अधिकारी को प्रशास्ता कहते थे।
16. दौवारिक - यह राजप्रसाद का प्रधान पदाधिकारी होता था।
17. आन्तर्वाँशिक - राजा की निजी अंगरक्षक सेना के अध्यक्ष को आन्तर्वाँशिक कहते थे।
18. आटविक - मगध साम्राज्य की सेना में 'आटविक - बल' का बड़ा महत्व था।

न्याय-व्यवस्था:

विशाल मगध-साम्राज्य में न्याय के लिए अनेक विध न्यायालय होते थे। सबसे छोटा न्यायालय ग्राम-संस्था (ग्रामसंघ) का होता था, जिसमें ग्राम के निवासी अपने मामलों का स्वयं निपटारा करते थे। इसके उपर संग्रहण के, पिफर द्रोणमुख के और पिफर जनपदसन्धि के न्यायालय होते थे।[18] इनके उपर पाटलिपुत्र में विद्यमान धर्मस्थायी और कंटकशोधन न्यायालय थे।

कानून के विविध अंग- न्यायालयों में किस कानून के अनुसार न्याय किया जाता था, उस संबंध में भी कौटलीय अर्थशास्त्रा से परिचय प्राप्त होता है। इस कानून के चार अंग होते थे धर्म, व्यवहार, चरित्र और राजशासन।

निष्कर्ष

कौटिल्य के अर्थशास्त्रा में अनेक विचारों को समाहित किया गया है। यह ग्रंथ एक ओर तो राजशास्त्रा संबंधी सिद्धांतों का उल्लेख करता है तो दूसरी ओर राज-व्यवस्था अथवा प्रशासन संबंधी व्यावहारिक निर्देश देता है। कौटिल्य राजा को परामर्श देता है कि उसे ऐसे सिद्धांतों एवं तथ्यों को ध्यान में रखकर शासन करना चाहिए जिससे वह स्वयं भी सुरक्षित एवं लोकप्रिय रहे तथा उसकी प्रजा भी सुख-समृद्धि का भोग, धर्म व न्यायपूर्ण दंग से शांतिपूर्ण वातावरण में करे। कौटिल्य ने राजा को इस बात का निर्देश दिया है कि जब राजा सक्रिय रूप से कार्य करेगा तभी शासनतंत्रा में मंत्री, अध्यक्ष आदि कर्मचारी-वर्ग राज्य की उन्नति के लिए तत्पर होंगे। कौटिल्य राजा की उन्नति के लिए तत्पर होंगे। कौटिल्य राजा को अपनी मंत्राण को गोपनीय रखने का निर्देश दिया है। आज इस प्रकार को गोपनीयता लोकतांत्रिक सरकारों के प्रशासनिक मामलों में बरती जाती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जब अर्थशास्त्रा उत्तम प्रशासन अथवा राज्य के अन्तर्बन्धों की विवेचना करता है तो हम आधुनिक काल में भी उससे बहुत कुछ सीख सकते हैं।

संदर्भ-सूची

1. 'तत्कूटस्थानीयो हि स्वामीति।' कौ. अर्थ. 8/1
2. "स्वामिन्यायत्ता प्रधानसिद्धिः। मन्त्रिश्वायत्ता यत्नसिद्धिः। उभयायत्ता प्रधानायत्ता सिद्धिः।" कौ. अर्थ. 9/9।
3. "राजा राज्यमिति प्रकृति संक्षेपः।" कौ. अर्थ. 8/2।
4. कौ. अर्थ. 8/1 ।
5. कौ. अर्थ. 8/1 ।
6. कौ. अर्थ. 1/5 ।
7. "सहायसाध्यं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते।
कुर्वीत सचिवांस्तस्मात्तेषां च शृणुयान्मतम् ॥" कौ.
अर्थ. 1/4 ।
8. कौ. अर्थ. 1/11 ।
9. कौ. अर्थ. 111 ।

10. दिव्यावदान, पृ.- 439-432
11. डबलपदकसम रु तिंहउए गगगष्टण्
12. कौ. अर्थ. 1/14 ।
13. कौ. अर्थ. 2/1 ।
14. कौ. अर्थ. 2/24 ।
15. कौ. अर्थ. 2/6 ।
16. कौ. अर्थ. 2/14 ।
17. कौ. अर्थ. 3/1 ।
18. "धर्मस्यास्त्रायस्त्रायो वाद्धमात्याः जनपदसन्धि-
संग्रहण द्रोणमुख स्थानीयेषु व्यावहारिकान् अर्थात्
कुर्युः ।" कौ. अर्थ. 3/1 ।

Corresponding Author

Dr. Renu Singh*

Teacher, Politic Science, Shri Ram Lakhan Singh
Yadav Sarvoday Senior Secondary School,
Punaichak, Patna